मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालो और उनमें दिलचस्पी लेनेवालोंसे मैं यह कहना चाहता हू कि मुझे हमेशा एक ही रूपमें दिखाई देनेकी कोई परवाह नही है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे विचारोको छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हू। उमरमे भले मैं बूढा हो गया हू, लेकिन मुझे ऐसा नही लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा। मुझे एक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठकको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारीमे विश्वास हो, तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, ३०-४-'३३ गांधीजी

पाठकोंसे

मेरे लेखोंका मेहनतसे अध्ययन करनेवालों और उनमें दिलचस्पी लेनेवालोंसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा एक ही रूपमें दिखाई देनेकी कोई परवाह नहीं है। सत्यकी अपनी खोजमें मैंने बहुतसे विचारोंको छोड़ा है और अनेक नई बातें मैं सीखा भी हूँ। उमरमें भले मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटनेके बाद मेरा विकास बन्द हो जायगा। मुझे एक ही बातकी चिन्ता है, और वह है प्रतिक्षण सत्य-नारायणकी वाणीका अनुसरण करनेकी मेरी तत्परता। इसलिए जब किसी पाठकको मेरे दो लेखोंमें विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारीमें विश्वास हो, तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखोंमें से मेरे बादके लेखको प्रमाणभूत माने।

हरिजनबन्धु, ३०–४–'३३ गांधीजी

अनुक्रमणिका

त्यागका संदेश

१

हिन्दू धर्मका सार

हम कुछ क्षणके लिए इस बातका विचार करें कि हिन्दू धर्मका सार किस वस्तुमें समाया हुआ है और जिन अनेक साधु-संतोंके बारेमें हमारे पास ऐतिहासिक प्रमाण हैं उन सन्तोंको प्रेरणा देनेवाली वस्तु कौनसी है। हिन्दू धर्मने जगतको इतने तत्त्वज्ञानी क्यों दिये हैं? हिन्दू धर्मके भक्तोंको सैकड़ों वर्षोंसे उत्साह प्रदान करनेवाली कौनसी वस्तु हिन्दू धर्ममें है? . अस्पृश्यताके खिलाफ मेरी लड़ाईके दौरानमें अनेक कार्यकर्ताओंने मुझसे पूछा है कि हिन्दू धर्मका सार क्या है? वे कहते थे कि इस्लाममें जैसा सादा कलमा है वैसी कोई सादी वस्तु हमारे पास नहीं है। तत्त्वज्ञानका चिन्तन करनेवाले तथा सांसारिक व्यवहारोंमें रचेपचे रहनेवाले — दोनों प्रकारके हिन्दुओंको संतोष दे सके, ऐसी कोई वस्तु हमारे पास है या नहीं? कुछ लोगोंने कहा है — और वह सकारण है — कि गायत्री एक ऐसा मंत्र है, जो यह हेतु पूरा कर सकता है। गायत्री मंत्रका अर्थ समझनेके बाद मैंने हजार बार उसका जप किया है। लेकिन अभी भी मुझे लगता है कि वह मेरी समस्त आध्यात्मिक आकांक्षाओंको पूर्ण संतोष नहीं दे सका है। और आप यह जानते हैं कि मैं बरसोंसे भगवद्गीताका भक्त बन गया हूं और मैंने कहा है कि वह मेरी सारी कठिनाइयां दूर कर देती है और शंका तथा परेशानीके सैकड़ों अवसरों पर वह मेरी कामधेनु, मेरी मार्गदर्शक, मेरे जीवन-पथको प्रकाशित करनेवाली तथा मेरा शब्दकोश सिद्ध हुई है। मुझे ऐसे एक भी अवसरकी याद नहीं है, जब उसने मेरी मदद न की हो। परन्तु वह ऐसा ग्रन्थ नहीं है, जिसे मैं इन सारे श्रोताजनोंके सामने रख सकूं। प्रार्थनाके साथ अध्ययन करनेके बाद ही यह कामधेनु अपने स्तनोंका ज्ञानरूपी दूध देती है।

धर्ममें कोई ऐसी चीज जिसकी जरूरत नहीं, जो इस मंत्रके अर्थके विरुद्ध हो या उससे मेल नहीं खाती हो। एक साधारण आदमी इससे ज्यादा और क्या सीखना चाहता है कि एक अद्वितीय ईश्वर, भूतमात्रका स्रष्टा और स्वामी सम्पूर्ण विश्वके अणु-अणुमें व्याप्त है? इस मंत्रके दूसरे तीन भाग पहले भागसे ही सीधे फलित होते हैं। अगर आप मानते हैं कि ईश्वरने जो चीजें बनाई हैं उन सबमें वह मौजूद है, तो आपको यह मानना ही चाहिये कि जो चीज उसने नहीं दी है उसे आप नहीं भोग सकते। और यह देखते हुए कि वह अपनी असंख्य सन्तानोंका स्रष्टा है, यह निष्कर्ष निकलता है कि आप किसीकी सम्पत्तिका लोभ नहीं कर सकते।

यदि आपका यह विचार है कि आप उसके पैदा किये हुए असंख्य प्राणियोंमें से एक हैं, तो आपको चाहिये कि अपना सब-कुछ त्याग कर आप उसके चरणोंमें रख दें। इसका अर्थ यह है कि सर्वस्व त्यागका कार्य निरा शारीरिक या भौतिक त्याग नहीं है, परन्तु दूसरे या नये जन्मका द्योतक है। यह सोच-समझकर किया हुआ कर्म है, अज्ञानवश किया हुआ कर्म नहीं है। इसलिए वह पुनर्जन्म है। और चूंकि जिसके शरीर है उसे अपने लिए खाने, पीने और पहननेको चाहिये, इसलिए उसे जो भी चाहिये वह स्वभावतः प्रभुसे मांगना चाहिये और वह उसे अपने त्यागके स्वाभाविक पुरस्कारके रूपमें मिल जाता है। इतना ही नहीं, यह मंत्र इस विशाल विचारके साथ पूरा होता है : किसीके धनका लोभ न करो। ज्यों ही आप इन उपदेशों पर चलने लगते हैं, आप संसारके सयाने नागरिक बन जाते हैं और सब प्राणियोंके साथ शान्तिपूर्वक रहने लगते हैं। इससे इस लोक और परलोककी हमारी सर्वोच्च आकांक्षायें पूरी हो जाती हैं।

इसी मंत्रको गांधीजीने दूसरी सभामें हमारे हृदयोंमें उठनेवाली सारी समस्याओं और शंकाओंके हलकी सुनहरी कुंजी बताते हुए कहा :

मैं उपनिषद्का एक मंत्र आज आपके सामने बोलकर रखता हूं। मैं मानता हूं कि उसमें हिन्दू धर्मका पूरा सार आ गया है। आपमें से बहुतसे ईशोपनिषद्को जानते होंगे। मैंने वर्षों पहले उसे अनुवाद और टीकाके साथ पढ़ा था। यरवडा जेलमें मैंने उसे कण्ठस्थ किया था। परन्तु उस समय उसने मुझे वैसा मोहित नहीं किया, जैसा कि पिछले कुछ महीनोंमें किया है; और अब मैं इस अंतिम निर्णय पर पहुंचा हूं कि अगर सारे उपनिषद् और अन्य समस्त धर्मग्रन्थ अचानक जलकर राख हो जायं और हिन्दुओंकी स्मृतिमें केवल ईशोपनिषद्का पहला मंत्र ही रह जाय, तो भी हिन्दू धर्म सदा जीवित रहेगा।

इस मंत्रके चार भाग हैं। पहला भाग है : 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्'। इसका अर्थ मैं ऐसा करता हूं कि इस विशाल जगतमें हम जो कुछ देखते हैं वह सब ईश्वरसे व्याप्त है। दूसरे और तीसरे भागको मैं साथमें ले लेता हूं : 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'। इनको मैं दो हिस्सोंमें बांटकर इस प्रकार अर्थ करता हूं : उसका त्याग करो और भोगो। एक और अनुवाद है जिसका वही अर्थ है : वह (ईश्वर) तुम्हें जो कुछ देता है उसे भोगो। इस तरह भी आप उसे दो भागोंमें बांट सकते हैं। फिर अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण भाग आता है : 'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'। इसका अर्थ है : किसीके धनका लोभ न करो। इस प्राचीन उपनिषद्के शेष सब मंत्र इस पहले मंत्रकी टीका जैसे हैं; वे उसका पूरा अर्थ बतानेकी कोशिश करते हैं।

मैं गीताकी दृष्टिसे यह मंत्र पढ़ता हूं या इस मंत्रकी दृष्टिसे गीता पढ़ता हूं, तो मुझे लगता है कि गीता इस मंत्रका भाष्य या विवरण है। मुझे यह मंत्र समाजवादीकी और साम्यवादीकी, दार्शनिककी और अर्थशास्त्रीकी सबकी भूख शान्त करनेवाला मालूम होता है। जो लोग धर्मसे हिन्दू नहीं हैं उन सबसे भी मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूं कि यह मंत्र उनकी अभिलाषा और आकांक्षाओंको भी पूरा करता है। और अगर यह सच है — मैं तो सच ही मानता हूं — तो आपको हिन्दू

धर्ममें कोई ऐसी चीज लेनेकी जरूरत नहीं, जो इस मंत्रके अर्थके विरुद्ध हो या उससे मेल नहीं खाती हो। एक साधारण आदमी इससे ज्यादा और क्या सीखना चाहता है कि एक अद्वितीय ईश्वर, भूतमात्रका स्रष्टा और स्वामी सम्पूर्ण विश्वके अणु-अणुमें व्याप्त है? इस मंत्रके दूसरे तीन भाग पहले भागमें ही सीधे फलित होते हैं। अगर आप मानते हैं कि ईश्वरने जो चीजें बनाई हैं उन सबमें वह मौजूद है, तो आपको यह मानना ही चाहिये कि जो चीज उसने नहीं दी है उसे आप नहीं भोग सकते। और यह देखते हुए कि वह अपनी असख्य संतानोंका स्रष्टा है, यह निष्कर्ष निकलता है कि आप किसीकी सम्पत्तिका लोभ नहीं कर सकते।

यदि आपका यह विचार है कि आप उसके पैदा किये हुए असख्य प्राणियोंमें से एक हैं, तो आपको चाहिये कि अपना सब-कुछ त्याग कर आप उसके चरणोंमें रख दें। इसका अर्थ यह है कि सर्वस्व त्यागका कार्य निरा शारीरिक या भौतिक त्याग नहीं है, परन्तु दूसरे या नये जन्मका द्योतक है। यह सोच-समझकर किया हुआ कर्म है, अज्ञानवश किया हुआ कर्म नहीं है। इसलिए वह पुनर्जन्म है। और चूंकि जिसके शरीर है उसे अपने लिए खाने, पीने और पहननेको चाहिये, इसलिए उसे जो भी चाहिये वह स्वभावतः प्रभुसे मांगना चाहिये और वह उसे अपने त्यागके स्वाभाविक पुरस्कारके रूपमें मिल जाता है। इतना ही नहीं, यह मंत्र इस विशाल विचारके साथ पूरा होता है किसीके धनका लोभ न करो। ज्यों ही आप इन उपदेशों पर चलने लगते हैं, आप संसारके सयाने नागरिक बन जाते हैं और सब प्राणियोंके साथ शान्ति-पूर्वक रहने लगते हैं। इससे इस लोक और परलोककी हमारी सर्वोच्च आकाक्षायें पूरी हो जाती हैं।

इसी मंत्रको गांधीजीने दूसरी सभामें हमारे हृदयोंमें उठनेवाली सारी समस्याओं और शंकाओंके हलकी सुनहरी कुंजी बताते हुए कहा :

ईशोपनिषद्का यह एक मंत्र याद रखिये और दूसरे सब शास्त्रोंको भूल जाइये। अवश्य ही आप चाहें तो धर्मग्रन्थोंके महासागरमें डूबकर अपना दम घोंट सकते हैं। अगर पंडित लोग नम्र और बुद्धिमान हों तो उनके लिए ये धर्मग्रंथ अच्छे हैं। परन्तु साधारण आदमीको भव-सागरसे पार उतरनेके लिए इस मंत्रके सिवा और किसी चीजकी जरूरत नहीं है:

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किंच जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध कस्यस्विद् धनम्॥

इस विश्वमें जो कुछ है उस सबमें ईश्वर शासक बनकर विराजमान है। इसलिए सर्वस्वका त्याग करके उसे समर्पण कर दो और फिर उस भागका भोग या उपभोग करो जो तुम्हारे हिस्सेमें आये। दूसरे किसीके धनका लोभ हरगिज न करो।

हरिजन, ३०-१-’३७; पृ० ४०४-०५

२

त्याग अनिवार्य है*

कल रातको त्रिवलनकी सभामें मैंने हिन्दू धर्मका संदेश समझाया था। आपके सामने कुछ मिनट तक मैं उसी विषय पर बोलना चाहता हूं। मैंने उस सभामें यह कहनेका साहस किया था कि समस्त हिन्दू धर्मका सार ईशोपनिषद्के पहले मंत्रमें आ जाता है:

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किंच जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध कस्यस्विद् धनम्॥

जो लोग थोड़ी भी संस्कृत जानते हैं वे देखेंगे कि दूसरे वैदिक मंत्रोंमें होती है वैसी कठिन या क्लिष्ट भाषा इस मंत्रकी नहीं है।

* त्रावणकोरके हरिपाद नामक स्थानमें ता० १७-१-’३७ को गांधीजीका भाषण।

वस्त्र और आश्रय पानेका अधिकार मिलता है। इसलिए चाहे जैसे समझिये, भोग अथवा उपयोग त्यागका पुरस्कार है ऐसा समझिये या त्याग भोगकी अनिवार्य शर्त है ऐसा समझिये — हमारे जीवनके लिए, हमारी आत्माके लिए, त्याग अत्यावश्यक है। और मंत्रमें दी गई शर्त मानो पूरी न हो इसलिए ऋषि शीघ्र ही यह कहकर उसे पूरा करते हैं: 'दूसरेकी सम्पत्तिका लोभ न करो'। अस्तु मेरा आपसे यह कहना है कि संसारके किसी भी भागमें पाया जानेवाला संपूर्ण दर्शनशास्त्र या धर्म इस मंत्रमें समाया हुआ है और इससे उलटा जो कुछ है उसे यह अस्वीकार करता है। शास्त्रार्थके नियमोंके अनुसार जो कुछ श्रुतिके विरुद्ध हो — और ईशोपनिषद् श्रुति ही है — उसका सर्वथा अस्वीकार करना चाहिये।

अब मैं इस मंत्रको वर्तमान परिस्थिति पर लागू करना चाहता हूं। यदि विश्वमें जो कुछ है वह सब ईश्वर द्वारा व्याप्त है अर्थात् ब्राह्मण और भंगी, पंडित और चांडाल, इजावा और परिया — कोई भी जाति हो — यदि सभीमें भगवान विराजमान है, तो इस मंत्रके अनुसार न कोई ऊंचा है और न कोई नीचा है। सभी बिलकुल बराबर हैं, क्योंकि सब उसी एक स्रष्टाकी सन्तान हैं। और यह ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंके सामने केवल बोल कर बता देने जैसी तत्वज्ञानकी वस्तु नहीं है। परन्तु इसमें एक शाश्वत सत्य निहित है, जिसमें न तो कोई कमी की जा सकती है और न किसी तरहका समझौता किया जा सकता है। इसलिए त्रावणकोरके महाराजा और महारानी त्रावणकोरके छोटेसे छोटे प्राणीसे तिलभर भी ऊंचे नहीं हैं। हम सब एक ही ईश्वरकी संतान और सेवक हैं। अगर महाराजा समान लोगोंमें प्रथम हैं — और वे प्रथम ही हैं — तो इसका कारण उनका राजपदका अधिकार नहीं है, परन्तु उनका सेवाका अधिकार है। इसलिए हर राजा 'पद्मनाभदास' अथवा विष्णुका सेवक कहा जाता है, यह कितना सुन्दर, कितना ... विचार है! इसलिए जब मैंने आपसे कहा कि महाराजा या

महारानी हमसे जरा भी ऊंचे नहीं हैं, तब मैंने महाराजा और महारानी द्वारा स्वयं स्वीकार किया हुआ सत्य ही आपसे कहा। और अगर ऐसा है तो यहां बैठा हुआ कोई पुरुष या स्त्री दूसरे किसी आदमीसे ऊंची होनेका दावा कैसे कर सकती है? इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि अगर यह मंत्र सत्य हो, और यहां सभामें बैठा हुआ कोई भाई या बहन यह मानती हो कि 'अवर्णों' के प्रवेशसे मंदिर भ्रष्ट हो जाते हैं, तो मैं कहूंगा कि वह व्यक्ति महापाप करता है। मैं आपसे कहता हूं कि मंदिर-प्रवेशकी घोषणाने हमारे मंदिरोंके कलंकको धोकर उन्हें पवित्र बना दिया है।

मैं चाहूंगा कि जो मंत्र मैंने अभी कहा है वह हम सब स्त्री-पुरुष और बच्चोंके हृदयों पर अंकित हो जाय। और जैसा कि मैं मानता हूं, यदि इसमें हिन्दू धर्मका सार आ जाता है, तो वह प्रत्येक मंदिरके द्वार पर लिख दिया जाना चाहिये। तब क्या आप यह नहीं मानते कि अगर हम किसीको इन मंदिरोंमें जानेसे रोकें, तो हम हर कदम पर इस मंत्रको झुठलायेंगे? इसलिए अगर आपको इस उदारता-पूर्ण घोषणाके योग्य सिद्ध होना हो और अगर आप अपने प्रति तथा अपने महाराजके प्रति वफादार रहना चाहते हों, तो आप इस घोषणाके अक्षरोंका और इसकी आत्माका पूर्ण रूपसे पालन करें। घोषणाकी तारीखसे त्रावणकोरके सारे मंदिर, जिनके बारेमें एक बार मैंने कहा था कि वे भगवानके निवास-स्थान नहीं हैं, भगवानके निवास बन गये हैं, क्योंकि अस्पृश्य माने जानेवाले किसी भी आदमीको अब मंदिरोंमें जानेसे रोका नहीं जायगा। इसलिए मैं आशा रखता हूं और प्रार्थना करता हूं कि सारे त्रावणकोरमें ऐसा एक भी पुरुष या स्त्री नहीं होगी, जो इस कारणसे मंदिरोंमें जाना छोड़ेगी कि वे समाजके बहिष्कृत और अस्पृश्य लोगोंके लिए खोल दिये गये हैं।

हरिजन, १०-१-'३७; पृ० ४०७-०८

संसारके धर्मग्रंथोंकी अपनी खोजमें कोई ऐसी चीज नहीं मिली है, जो इस मंत्रके साथ जोड़ी जाय। मैंने धर्मशास्त्रोंका जितना अध्ययन किया है — मैं स्वीकार करता हूँ कि वह बहुत थोड़ा है — उस सबका सिंहावलोकन करते हुए मुझे लगता है कि समस्त धर्मग्रन्थोंमें जो भी अच्छी चीज है वह इस मंत्रमें मिल जाती है। विश्वबन्धुत्वकी — न सिर्फ सारे मानव-प्राणियोंके बन्धुत्वकी बल्कि समस्त प्राणियोंके बन्धुत्वकी — बात लीजिये; वह भी इस मंत्रमें मौजूद है। प्रभुमें या स्वामीमें — आप उसे जो भी नाम देना चाहें दें — अटल श्रद्धाकी बात लीजिये, तो वह भी इस मंत्रमें मिलती है। ईश्वरके प्रति सर्वार्पण-भावको लें और इस विश्वासको लें कि वह मेरी सब जरूरतें पूरी करेगा, तो भी मैं कहूँगा कि मुझे वह कल्पना इस मंत्रमें मिल जाती है। वह ईश्वर मेरी और आप सबकी रग-रगमें समाया हुआ है, इसलिए मुझे इस मंत्रसे पृथ्वीके तमाम प्राणियोंकी समानताका सिद्धान्त मिलता है। और इससे सब तत्त्वान्वेषी साम्यवादियोंकी आकांक्षायें पूरी होनी चाहिये। यह मंत्र मुझे बताता है कि जो भी चीज ईश्वरकी है उसे मैं अपनी नहीं समझ सकता। और यदि मैं चाहता हूँ कि मेरा जीवन और उन सबका जीवन, जो इस मंत्रमें विश्वास रखते हैं, सम्पूर्ण समर्पणका जीवन हो, तो उससे यह परिणाम निकलता है कि वह जीवन हमारे साथी प्राणियोंकी सतत सेवाका जीवन होना चाहिये।

मैं कहता हूँ कि मेरी यह श्रद्धा है और जो अपनेको हिन्दू कहते हैं उन सबकी यही श्रद्धा होनी चाहिये। और मैं अपने ईसाई तथा मुसलमान भाइयोंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि अगर वे अपने धर्मशास्त्रोंको ढूँढ़ेंगे, तो उन्हें इससे अधिक उनमें कुछ नहीं मिलेगा।

मैं आपसे यह बात छिपाना नहीं चाहता कि हिन्दू धर्मके नाम पर जो अनेक अंधविश्वास समाजमें प्रचलित हैं उनसे मैं अनजान नहीं हूँ। मैं उन सबको जानता हूँ और मुझे इस बातका अत्यन्त दुःख है कि

५

अपनी सम्पत्तिका त्याग करके तू उसे भोग

धनवानोंको आज अपना धर्म खोज लेना है। अगर अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए उन्होंने सिपाही वगैरा रखे, तो मुमकिन है कि लूटमारके हंगामेमें वे रक्षक ही उनके भक्षक बन जायें। इसलिए धनवानोंको या तो हथियार चलाना सीख लेना चाहिये, या अहिंसाकी दीक्षा ले लेनी चाहिये। इस दीक्षाको लेने और देनेका सबसे उत्तम मंत्र है 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'—अपनी सम्पत्तिका त्याग करके तू उसे भोग। दूसरी तरह विस्तारसे समझाकर कहूं तो मैं यह कहूंगा : "तू करोड़ों रुपये खुशीसे कमा। लेकिन यह समझ ले कि तेरा धन सिर्फ तेरा ही नहीं है, बल्कि सारी दुनियाका है; इसलिए जितनी तेरी सच्ची जरूरतें हों उतनी पूरी करनेके बाद जो धन बचे उसका उपयोग तू समाजके लिए कर।" शान्तिकी साधारण अवस्थामें तो इस नसीहत पर अमल नहीं हुआ। लेकिन संकटके इस समयमें भी अगर धनिकोंने इसे नहीं अपनाया, तो दुनियामें वे अपने धनके और भोगके गुलाम बनकर ही रह सकेंगे और अन्तमें शरीर-बलवालोंकी गुलामीमें बंध जायेंगे।

मैं उस दिनको आता देख रहा हूं जब धनिकोंकी सत्ताका अन्त होनेवाला है और गरीबोंका सिक्का चलनेवाला है, फिर चाहे वह शरीर-बलसे चले या आत्मबलसे। शरीर-बलसे प्राप्त की हुई सत्ता मानव-देहकी तरह क्षणभंगुर होगी, जब कि आत्मबलसे प्राप्त की हुई सत्ता आत्माकी तरह अजर-अमर रहेगी।

हरिजनसेवक, १–२–'४२; पृ० २०

[गांधीजीने ऊपर जो विचार प्रकट किये हैं, उनके सम्बन्धमें श्री शंकरराव देवने एक प्रश्न उठाया था। उसका उत्तर गांधीजीने

…सम्पत्ति आवश्यक रूपमें अशुद्ध नहीं होती' नामक लेखमें दिया था, … नीचे दिया गया है।]

श्री शंकरराव देव लिखते हैं

"पिछले 'हरिजन' में छपे 'एक दुःखद घटना' शीर्षक अपने लेखमें आप धनवानोंसे कहते हैं कि वे करोड़ों खुशीसे कमायें, लेकिन यह समझ ले कि उनका वह धन सिर्फ उन्हींका नहीं है, बल्कि सारी दुनियाका है, इसलिए अपनी सच्ची जरूरतें पूरी करनेके बाद जितना धन बचे उसका उपयोग उन्हें समाजके लिए करना चाहिये। जब मैंने इसे पढ़ा तो पहला सवाल मनमें यह उठा कि ऐसा क्यों होना चाहिये? पहले करोड़ों कमाना और फिर समाजके हितके लिए उन्हें खर्च करना? आजकी इस समाज-रचनामें करोड़ों कमानेके साधन अशुद्ध ही हो सकते हैं, और जो अशुद्ध साधनोंसे करोड़ों कमाता है, उससे 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' मंत्रके अनुसार चलनेकी आशा नहीं रखी जा सकती। क्योंकि अशुद्ध साधनों द्वारा करोड़ों कमानेकी क्रियामें कमाने-वालेका चरित्र दूषित या भ्रष्ट हुए बिना रह ही नहीं सकता। इसके सिवा, आप तो हमेशासे शुद्ध साधनों पर जोर देते रहे हैं। मुझे डर है कि इस मामलेमें कहीं लोग गलतीसे यह न समझ लें कि आप साधनोंकी अपेक्षा साध्य पर ज्यादा जोर दे रहे हैं।

"अतएव मेरा निवेदन है कि आप कमाईके साधनोंकी शुद्धता पर भी अधिक नहीं तो उतना जोर अवश्य दीजिये, जितना कमाये हुए धनको लोकहितके कामोंमें खर्च करने पर आप देते हैं। मेरे विचारमें यदि साधनोंकी शुद्धताका दृढ़तासे पालन किया जाय, तो कोई आदमी करोड़ों कभी कमा ही नहीं सकेगा; और उस दशामें समाजके हितके लिए उन्हें खर्च करनेकी कठिनाई बहुत गौण रूप ले लेगी।"

हिन्दू धर्मकी ओटमें जितने ही अन्धविश्वास चल रहे हैं। मुझे यह सत्य कहनेमें कोई संकोच नहीं है। मुझे अछूतपनको इन अंधविश्वासोंमें सबसे बड़ा बतानेमें कभी संकोच नहीं हुआ है। परन्तु इन सबके होते हुए भी मैं हिन्दू बना हुआ हूं, क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि ये अंधविश्वास हिन्दू धर्मके अभिन्न अंग हैं। हिन्दू धर्मने शास्त्र-वचनोंके अर्थ लगानेके जो नियम बताये गये हैं वे ही नियम मुझे यह सिखाते हैं कि जिस सत्यका मैंने आपके सामने प्रतिपादन किया है और जो इस मंत्रमें निहित है, उससे जो भी वस्तु असंगत हो उसे यह समझकर तुरन्त अस्वीकार कर देना चाहिये कि इसका हिन्दू धर्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

हरिजन, ३०–१–'३७; पृ० ४१०

४

सवा सौ वर्ष जीनेकी अभिलाषा

एक सौ पच्चीस वर्ष जीनेकी बात मैंने बिना सोचे नहीं कही थी। उसमें रहस्य था। मेरी इस इच्छाका आधार ईशोपनिषद्का नीचे लिखा मंत्र है:

> कुर्वन्नेवेह कर्माणि, जिजीविषेच्छतं समाः।
> एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे॥

इसका शब्दार्थ इस प्रकार है: सेवाकार्य यानी निष्काम कर्म करते हुए मनुष्य सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रखे। सौ वर्ष यानी १२५ वर्ष इस आशयकी एक टीका मैंने पढ़ी थी।

जो भी हो, मेरी दलीलके लिए १०० का अर्थ यहां जरूरी नहीं है। मुझे तो सिर्फ इस इच्छापूर्तिकी शर्त ही बतानी है। निष्काम सेवाकार्य हुए अर्थात् अनासक्त भावसे रहते हुए लम्बी उमर तक जीनेकी

इच्छा रखनी चाहिये। ऊपरके मत्रमे मैं यह भावार्थ निकालता हू कि इसके बिना जीनेकी इच्छा नही की जा सकती। मुझे इस बारेमें जरा भी शंका नही कि अगर मनुष्य अनासक्त न हो सके, तो सवा सौ वर्ष जिया ही नही जा सकता। मनुष्यकी आखें टिमटिमाती रहें और वह पलग पर मुर्देकी तरह पड़ा रहे, तो वह दूसरो पर — सगे-सम्बन्धियो तथा समाज पर — बोझ बन जाता है और तब उसका यह धर्म हो जाता है कि वह ज्यो त्यो जीनेके बदले ईश्वरसे अपने लिए जल्दी मौतकी प्रार्थना करे।

मनुष्यकी देह भोगके लिए हरगिज नही है, वह केवल सेवाके लिए है। त्यागमें रहस्य है, जीवन है। भोगमे मृत्यु है। निष्काम सेवा करते हुए सबको सवा सौ वर्ष तक जीनेका अधिकार है, सबको यह इच्छा रखनी चाहिये। ऐसे मनुष्यका समूचा जीवन सिर्फ सेवाके लिए होगा। इस सेवामें, इस सेवाके लिए किये गये त्यागमे, सम्पूर्ण रस भरा है। इस रसको कोई छीन नही सकता, क्योकि यह अमृत-रस हृदयमें से झरता है और जीवनको पोषण पहुचाता है। ऐसे जीवनमें आतुरता या चिन्ताके लिए कोई स्थान नही होता। उसमें अपूर्व आनन्द होता है। इस आनन्दके बिना मैं दीर्घ जीवनको असभव मानता हू; और अगर वह सभव भी हो तो निरर्थक है।

सभव है कि बाहरी उपायोसे लम्बे समय तक जिया जा सके, लेकिन वैसे जीवनके लिए इस विचारधारामें कही कोई स्थान नही है।

हरिजनसेवक, २४–२–'४६; पृ० २३

५

अपनी सम्पत्तिका त्याग करके तू उसे भोग

धनवानोंको आज अपना धर्म सोच लेना है। अगर अपनी संपत्तिकी रक्षाके लिए उन्होंने सिपाही वगैरा रखे, तो मुमकिन है कि लूटमारके हंगामेमें ये रक्षक ही उनके भक्षक बन जायें। इसलिए धनवानोंको या तो हथियार चलाना सीख लेना चाहिये, या अहिंसाकी दीक्षा ले लेनी चाहिये। इस दीक्षाको लेने और देनेका सबसे उत्तम मंत्र है: 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'—अपनी सम्पत्तिका त्याग करके तू उसे भोग। इसको जरा विस्तारसे समझाकर कहूं तो मैं यह कहूंगा: "तू करोड़ों रुपये खुशीसे कमा। लेकिन यह समझ ले कि तेरा धन सिर्फ तेरा ही नहीं है, बल्कि सारी दुनियाका है; इसलिए जितनी तेरी सच्ची जरूरतें हों उतनी पूरी करनेके बाद जो धन बचे उसका उपयोग तू समाजके लिए कर।" शांतिकी साधारण अवस्थामें तो इस नसीहत पर अमल नहीं हुआ। लेकिन संकटके इस समयमें भी अगर धनिकोंने इसे नहीं अपनाया, तो दुनियामें वे अपने धनके और भोगके गुलाम बनकर ही रह सकेंगे और अन्तमें शरीर-बलवालोंकी गुलामीमें बंध जायेंगे।

मैं उस दिनको आता देख रहा हूं जब धनिकोंकी सत्ताका अन्त होनेवाला है और गरीबोंका सिक्का चलनेवाला है, फिर चाहे वह शरीर-बलसे चले या आत्मबलसे। शरीर-बलसे प्राप्त की हुई सत्ता मानव-देहकी तरह क्षणभंगुर होगी, जब कि आत्मबलसे प्राप्त की हुई सत्ता आत्माकी तरह अजर-अमर रहेगी।

हरिजनसेवक, १–२–'४२; पृ० २०

[गांधीजीने ऊपर जो विचार प्रकट किये हैं, उनके सम्बन्धमें श्री शंकरराव देवने एक प्रश्न उठाया था। उसका उत्तर गांधीजीने

'सम्पत्ति आवश्यक रूपमें अशुद्ध नहीं होती' नामक लेखमें दिया था, जो नीचे दिया गया है।]

श्री शंकरराव देव लिखते हैं

"पिछले 'हरिजन' में छपे 'एक दुःखद घटना' शीर्षक अपने लेखमें आप धनवानोंसे कहते हैं कि वे करोड़ों खुशीसे कमायें, लेकिन यह समझ लें कि उनका वह धन सिर्फ उन्हींका नहीं है, बल्कि सारी दुनियाका है, इसलिए अपनी सच्ची जरूरतें पूरी करनेके बाद जितना धन बचे उसका उपयोग उन्हें समाजके लिए करना चाहिये। जब मैंने इसे पढ़ा तो पहला सवाल मनमें यह उठा कि ऐसा क्यों होना चाहिये? पहले करोड़ों कमाना और फिर समाजके हितके लिए उन्हें खर्च करना? आजकी इस समाज-रचनामें करोड़ों कमानेके साधन अशुद्ध ही हो सकते हैं, और जो अशुद्ध साधनोंसे करोड़ों कमाता है, उससे 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' मंत्रके अनुसार चलनेकी आशा नहीं रखी जा सकती। क्योंकि अशुद्ध साधनों द्वारा करोड़ों कमानेकी क्रियामें कमाने-वालेका चरित्र दूषित या भ्रष्ट हुए बिना रह ही नहीं सकता। इसके सिवा, आप तो हमेशासे शुद्ध साधनों पर जोर देते रहे हैं। मुझे डर है कि इस मामलेमें कहीं लोग गलतीसे यह न समझ लें कि आप साधनोंकी अपेक्षा साध्य पर ज्यादा जोर दे रहे हैं।

"अतएव मेरा निवेदन है कि आप कमाईके साधनोंकी शुद्धता पर भी अधिक नहीं तो उतना जोर अवश्य दीजिये, जितना कमाये हुए धनको लोकहितके कामोंमें खर्च करने पर आप देते हैं। मेरे विचारमें यदि साधनोंकी शुद्धताका दृढ़तासे पालन किया जाय, तो कोई आदमी करोड़ों कभी कमा ही नहीं सकेगा, और उस दशामें समाजके हितके लिए उन्हें खर्च करनेकी कठिनाई बहुत गौण रूप ले लेगी।"

मैं इससे सहमत नहीं हूं। मैं निश्चित रूपसे यह मानता हूं कि आदमी बिलकुल शुद्ध साधनोंसे करोड़ों रुपये कमा सकता है। इसमें यह मान लिया गया है कि उसे कानूनन् सम्पत्ति रखनेका अधिकार है। दलीलके तौर पर मैंने यह माना है कि निजी सम्पत्ति अपने-आपमें अशुद्ध नहीं समझी गई है। अगर मेरे पास किसी एक खानका पट्टा है और उसमें से मुझे अचानक कोई अनमोल हीरा मिल जाता है, तो मैं एकाएक करोड़पति बन सकता हूं और कोई मुझ पर अशुद्ध साधनोंका उपयोग करनेका दोष नहीं लगा सकता। ठीक यही बात उस समय हुई थी जब कोहिनूरसे कहीं अधिक मूल्यवान क्यूलिनन नामक हीरा मिला था। ऐसे और कई उदाहरण आसानीसे गिनाये जा सकते हैं। निःसन्देह करोड़ों कमानेकी बात मैंने ऐसे ही लोगोंके लिए कही थी।

मैं इस रायके साथ निःसंकोच अपनी सम्मति जाहिर करता हूं कि आम तौर पर धनवान — केवल धनवान ही क्यों, बल्कि ज्यादातर लोग — इस बातका विशेष विचार नहीं करते कि वे पैसा किस तरह कमाते हैं। अहिंसक उपायका प्रयोग करते हुए हमें यह विश्वास तो होना ही चाहिये कि कोई आदमी कितना ही पतित क्यों न हो, यदि उसका इलाज कुशलतासे और सहानुभूतिके साथ किया जाय तो उसे सुधारा जा सकता है। हमें मनुष्योंमें रहनेवाले दैवी अंशको जगानेका प्रयत्न [illegible]ना चाहिये और आशा रखनी चाहिये कि उसका अनुकूल परिणाम [illegible]कलेगा। यदि समाजका हरएक सदस्य अपनी शक्तियोंका उपयोग [illegible]क्तिक स्वार्थ साधनेके लिए नहीं बल्कि सबके कल्याणके लिए करे, तो [illegible]ा इससे समाजकी सुख-समृद्धिमें वृद्धि नहीं होगी? हम ऐसी जड़ [illegible]मानताका निर्माण नहीं करना चाहते, जिसमें कोई आदमी अपनी [illegible]ग्यताओंका पूरा पूरा उपयोग कर ही न सके। ऐसा समाज अन्तमें [illegible]ष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिए मेरी यह सलाह बिलकुल [illegible]क है कि धनवान लोग चाहे करोड़ों रुपये कमायें (बेशक, केवल [illegible]मानदारीसे), लेकिन उनका उद्देश्य वह सारा पैसा सबके कल्याणमें

अपरिग्रह या गरीबी

अपरिग्रह अस्तेयके भीतर ही समाया हुआ है। अनावश्यक चीज जैसे ली नहीं जानी चाहिये, वैसे ही उसका संग्रह भी नहीं होना चाहिये, यानी जिस खुराक या साज-सामानकी हमें जरूरत न हो, उसका संग्रह करना इस व्रतका भंग करना है। जिसका कुर्सीके बिना काम चल सकता है उसे कुर्सी रखनी ही न चाहिये। अपरिग्रही मनुष्य अपना जीवन हमेशा सादेसे सादा बनाता जाय।

अपरिग्रह और अस्तेय मनकी स्थितियां ही है। शरीरधारीके लिए उनका पूरा अमल असभव है। शरीर खुद ही एक परिग्रह है। और जब तक वह स्वय है तब तक दूसरे परिग्रहोकी आशा वह रखता ही है। कुछ परिग्रह अनिवार्य हैं। 'कुछ' की तादाद भी हर मानसिक स्थितिके अनुसार होगी। जैसे जैसे वह इन व्रतोकी तरफ मुडती जायगी, वैसे वैसे मनुष्य शरीरका मोह छोड़ता जायगा और अपनी जरूरतें घटाता जायगा। सबके लिए एक ही माप निश्चित नहीं किया जा सकता। चीटीका परिग्रह दूसरा ही होगा। कणसे ज्यादा जमा करनेवाली चीटी परिग्रही है। हजारो कण समा जाय इतनी घास जिस हाथीके सामने पडी हो, उसे परिग्रही नहीं माना जा सकता।

ऐसी परेशानियोसे सन्यासकी प्रचलित कल्पना पैदा हुई मालूम होती है। ऐसे सन्यासका पालन करना आश्रमका ध्येय नहीं है। किसी विरलेके लिए ऐसा सन्यास जरूरी भले ही हो। किसी मनुष्यमें दिगम्बर बनकर, समाधि लगाकर, गुफामें बैठकर विचारमात्रसे जगतका कल्याण करनेकी शक्ति हो सकती है। पर सभी गुफामें बैठ जायं तो नतीजा खराब ही होगा। साधारण स्त्री-पुरुषोके लिए तो मानसिक सन्यास ही समव है। दुनियामें रहते हुए भी जो सेवाभावसे और सेवाके लिए ही जीता है वह सन्यासी है।

ऐसा सन्यास सिद्ध करनेकी आश्रमको आशा है। वह उसी दिशामें [illegible] रहा है। इस मानसिक सन्यासमें जरूरी चीजोका संग्रह रहता है,

फिर भी प्रकार-मात्रके (शरीर तकके) त्यागकी तैयारी होनी चाहिये। यानी एक भी वस्तुके जानेसे चोट न लगनी चाहिये। और जब तक शरीर है तब तक सेवाका जो काम सामने आये वह किया जाय। खाने-पहननेको मिले तो ठीक, न मिले तो भी ठीक। ऐसी परीक्षाका समय आये तब कोई आश्रमवासी हारे नहीं।

सत्याग्रह आश्रमका इतिहास, पृ० ३८-४०, १९५९

चोरी न करनेका व्रत

[ता० १६-२-'१६ को मद्रासमें यंग मैन्स क्रिश्चियन एसो-सिएशनके सभाभवनमें दिये गये भाषणसे।]

मैं कहना चाहता हूँ कि एक दृष्टिसे हम सब चोर हैं। जिस चीजका मेरे लिए तुरन्त उपयोग न हो ऐसी चीज अगर मैं लेता हूँ और उसे अपने पास रख छोड़ता हूँ तो मैं उस चीजकी चोरी करता हूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि बिना किसी अपवादके सृष्टिका यह नियम है कि वह हमारी जरूरतकी चीजें रोज पैदा करती है। और अगर हर आदमी अपनी जरूरत जितना ही ले, उससे अधिक न ले, तो इस दुनियामें गरीबी न रहे और न कोई मनुष्य भुखमरीका ही शिकार हो। परन्तु जब तक हमारे बीच यह असमानता मौजूद है तब तक हम सब चोरी ही करते हैं। मैं समाजवादी नहीं हूँ। और जिनके पास संपत्ति है उनसे मैं संपत्ति छीनना भी नहीं चाहता। लेकिन मैं इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि हममें से जो व्यक्ति अंधकारमें से प्रकाशमें जाना चाहते हैं, उन्हें जरूर यह अस्तेय-व्रत पालना चाहिये। मैं किसीसे उसकी संपत्तिका अपहरण नहीं करना चाहता। अगर मैं ऐसा करता हूँ तो अहिंसा-धर्मसे विमुख होता हूँ। भले मेरी अपेक्षा किसी दूसरेके पास अधिक सम्पत्ति हो। लेकिन मुझे कहना चाहिये कि मुझसे कम अपना जीवन व्यवस्थित करनेके लिए तो मुझे जिस चीजकी जरूरत नहीं है उसे मैं अपने पास नहीं रख सकता। हिन्दुस्तानमें ऐसे तीस

ाखों मनुष्य हैं जिन्हें एक जून खाकर ही संतोष मानना पड़ता है—
ौर वह भी केवल सूखी रोटी और चुटकी-भर नमकसे ही। जब तक
न लाखों मनुष्योंको पूरे वस्त्र और पूरा भोजन नहीं मिल जाता,
ब तक आपको और मुझे हमारे पास जो कुछ है उसे रखनेका अधिकार
हीं। मुझे और आपको, जिन्हें अधिक ज्ञान है, अपनी जरूरतें नियमित
रनी चाहिये और स्वेच्छापूर्वक भूखे भी रहना चाहिये, ताकि इन
ोगोंकी सेवा-शुश्रूषा, भोजन और वस्त्रकी व्यवस्था हो सके। इसमें
े अपरिग्रह-व्रतका अपने-आप ही उद्भव होता है।

स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी, चतुर्थ संस्करण;
पृ० ३३७, ३८४–८५

ऐच्छिक गरीबी

[ता० २३–९–'३१ को लन्दनके गिल्ड-हाउसमें दिये गये
ांधीजीके भाषणसे]

जब मैंने अपनेको राजनीतिक जीवनकी भवरोंमें खिंचा हुआ पाया, तब मैंने अपने-आपसे पूछा कि मुझे अनैतिकतासे, असत्यसे और जिसे राजनीतिक लाभ कहा जाता है उससे अछूता रहनेके लिए क्या करना जरूरी है। . . मैं आपको अपने उस प्रयत्नकी तफसीलमें नहीं ले जाना चाहता, यद्यपि उसके सम्बन्धमे मैंने जो कुछ किया वह दिलचस्प है और मेरे लिए पवित्र भी है — मैं आपसे सिर्फ यह कह सकता हूं कि आरम्भमें मुझे काफी कठिन सघर्षसे गुजरना पडा और अपनी पत्नीके साथ तथा, जैसा कि मैं खूब स्पष्टतापूर्वक याद कर सकता हूं, अपने बच्चोंके साथ भी बहुत झगडना पडा। लेकिन जो हुआ उसे जाने दीजिये; मतलबकी बात यह है कि मैं इस दृढ निश्चय पर पहुंचा कि यदि मुझे उन लोगोकी सेवा करना है, जिनके बीच मुझे जीवन बिताना है और जिनकी कठिनाइयोको मैं दिन-प्रतिदिन देखता हूं, तो मुझे अपनी समूची सपत्ति तथा सारे परिग्रहका त्याग कर देना चाहिये।

मैं आपसे यह नहीं कह सकता कि ज्यों ही इस निश्चय पर मैं पहुंचा, त्यों ही मैंने एकदम प्रत्येक चीजका परित्याग कर दिया। मुझे आपके सामने स्वीकार करना चाहिये कि पहले-पहल इस दिशामें मेरी प्रगति धीमी रही। और जब जब मैं संघर्षके उन दिनोंको याद करता हूं, तो मैं देखता हूं कि आरम्भमें वह दुःखद भी था। लेकिन ज्यों ज्यों दिन बीतते गये मैंने यह महसूस किया कि कई अन्य चीजोंको भी, जिन्हें मैं तब तक अपनी मानता था, मुझे त्याग करना चाहिये और एक समय ऐसा आया जब उन वस्तुओंका त्याग मेरे लिए निश्चित रूपसे हर्षका विषय हो गया। और तब एकके बाद एक ये सारी वस्तुएं बहुत तेजीसे मुझसे छूटती गईं। और आपका अपने ये अनुभव सुनाते हुए मैं कह सकता हूं कि मेरे कन्धोंसे एक भारी बोझ उतर गया। मुझे महसूस हुआ कि अब मैं आसानीसे चल सकता हूं तथा अपने बन्धुओंकी सेवाके अपने कार्यको भी अधिक निश्चितता और अधिक प्रसन्नताके साथ कर सकता हूं। फिर तो किसी भी चीजका परिग्रह मेरे लिए कष्टदायक और भारस्प बन गया।

उस हर्षके कारणकी खोज करते हुए मैंने पाया कि यदि मैं किसी भी चीजको अपनी मानकर अपने पास रखता हूं, तो मुझे उसकी सारी दुनियासे रक्षा भी करनी पड़ती है। मैंने यह भी देखा कि कई लोग ऐसे हैं जिनके पास वह चीज नहीं है, यद्यपि वे उसे चाहते तो हैं और यदि वे भूखे, अकाल-पीड़ित लोग मुझे एकान्त स्थानमें पायें, तो वे मेरे पासकी उस चीजका बटवारा करके ही वे सन्तुष्ट नहीं होंगे बल्कि उसे मुझसे छीन भी लेंगे और ऐसी हालतमें मुझे पुलिसकी सहायता भी प्राप्त करनी होगी। मैंने अपने-आपसे कहा यदि वे इसे चाहते हैं और लेते हैं तो ऐसा वे किसी ईर्षापूर्ण हेतुसे नहीं करते, लेकिन इसलिए करते हैं कि उनकी आवश्यकता मेरी आवश्यकतासे कहीं अधिक है।

और तब मैंने अपने-आपसे कहा परिग्रह एक अपराध है। मैं तभी अमुक चीजोंका संग्रह कर सकता हूं, जब मुझे ज्ञान हो कि दूसरे

भी जो उन चीजोंका सग्रह करना चाहते है ऐसा कर सकते है। लेकिन हम जानते है — हममें से हरएक यह अनुभवसे कह सकता है कि ऐसा होना असभव है। अतएव एक ही चीज ऐसी है जो सबके द्वारा सग्रह की जा सकती है, और वह है अ-परिग्रह। दूसरे शब्दोंमें, स्वेच्छापूर्ण त्याग।

तब आप मुझसे कह सकते है - लेकिन जब आप स्वेच्छा-स्वीकृत गरीबी तथा अपरिग्रहके बारेमें बोल रहे है, उसी समय हम देखते है कि आप अपने शरीर पर बहुतसी चीजें धारण किये हुए है! और, यदि आप जिस चीजके बारेमे मैं अभी कह रहा हू उसके अर्थको ऊपरी तौर पर समझे है, तो आपका यह कटाक्ष ठीक भी होगा। किन्तु आप उसके ऊपरी अर्थको नही बल्कि आन्तरिक अर्थको समझिये। जब तक आपके पास शरीर है तब तक आपको कुछ-न-कुछ शरीरको पहनाना भी पडेगा। लेकिन तब आप अपने शरीरके लिए वह सब नही लेंगे जो आपको मिल सकता है, लेकिन यथासभव कमसे कम लेंगे; जितनेसे काम चल जाय उतना ही लेंगे। आप अपने मकानकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए अनेक हवेलियां नही चाहेंगे, बल्कि मामूली झोंपडीसे ही सतोष कर लेंगे। आपके भोजन आदिके सम्बन्धमें भी यही नियम लागू होगा।

अब आप देख सकते है कि आप और हम जिस चीजको सच्चा समझते है और जिस आनन्दपूर्ण तथा अभीष्ट अवस्थाका मैं आपके सामने चित्रण कर रहा हू, उन दोनोंके बीच सघर्ष है — ऐसा सघर्ष जो निरन्तर चलता है। दूसरी ओर सभ्यताका आधार आवश्यकताओंकी वृद्धिको समझा जाता है। यदि आपके पास एक कमरा है, तो आप दो-तीन कमरोंकी इच्छा करते है और जितने अधिक कमरे होते है उतने ही खुश होते है. इसी तरह आप अपने मकानमें जितना भी सामान हो उससे ज्यादा साज-सामान रखनेकी इच्छा रखते है। इस तरह आप अपनी आवश्यकताएं बढाते रहते है और आपकी इस इच्छाका कोई

सचमुच जरूरी हैं। यदि आपको भोजनकी आवश्यकता है, तो आपको भोजन मिल जाता है।

आपमें से कई स्त्री-पुरुष प्रार्थनामें विश्वास रखनेवाले हैं और मैंने बहुतसे ईसाइयोंसे सुना है कि उनकी अन्न-वस्त्रकी आवश्यकताओंकी पूर्ति प्रार्थनाके फलस्वरूप होती है। उनकी इस बातमें मेरा विश्वास है। लेकिन मैं चाहता हूं कि आप मेरे साथ एक कदम और आगे आयें और मेरे साथ यह विश्वास करें कि जो लोग पृथ्वीकी हर चीजको स्वेच्छापूर्वक त्याग देते हैं, यहां तक कि अपने शरीरको भी — अर्थात् जो हरएक चीजको छोड़नेके लिए तैयार हैं (और उन्हें अपनी इस तैयारीकी जांच बारीकीसे और सख्तीसे करनी चाहिये तथा अपने विरुद्ध हमेशा प्रतिकूल निर्णय देना चाहिये) — जो इस व्रतका पूरा पूरा पालन करेंगे, वे सचमुच कभी भी किसी अभावका अनुभव नहीं करेंगे। . . .

यहां अभावका शाब्दिक अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये। पृथ्वीतल पर मैंने ईश्वरके जैसा दूसरा कठोर मालिक नहीं देखा। वह आपकी पूरी पूरी परीक्षा लेता है। और जब आपको ऐसा लगता है कि आपकी श्रद्धा या आपका शरीर आपका साथ नहीं दे रहा है और आपकी नैया डूब रही है, तब वह आपकी मददको किसी न किसी तरह पहुंच जाता है और यह विश्वास करा देता है कि आपको अपनी श्रद्धा नहीं छोड़नी चाहिये और यह कि वह आपका संकेत पाते ही आनेको तैयार रहता है, परन्तु आपकी शर्त पर नहीं, अपनी शर्त पर। मैंने अनुभवसे यही पाया है। मुझे एक भी मौका ऐसा याद नहीं आता, जब ऐन वक्त पर उसने मेरा साथ छोड़ दिया हो। . . .

स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गांधी, चतुर्थ संस्करण, पृ० १०६६

७

उचित परिग्रह

अपरिग्रह अस्तेयके साथ जुड़ा हुआ है। कोई चीज मूलत: चोरीकी न होने पर भी चोरी हुई सम्पत्ति ही मानी जानी चाहिये, अगर हम उसे जरूरत न होने पर भी अपने अधिकारमें रखते हैं। परिग्रहका अर्थ है भविष्यके लिए व्यवस्था करना। कोई सत्य-शोधक, प्रेमधर्मका अनुयायी, कलके लिए कोई वस्तु नहीं रख सकता। ईश्वर कलके लिए कुछ भी जमा करके नहीं रखता। वह वर्तमानके लिए जितना आवश्यक हो उतना ही पैदा करता है, उससे अधिक कभी पैदा नहीं करता। इसलिए यदि हमें उसकी शक्ति और व्यवस्थामें विश्वास है, तो हमें इस बातका विश्वास रखना चाहिये कि वह हमें अपनी नित्यकी रोटी देगा, अर्थात् हमारी हर जरूरत पूरी कर देगा। सन्तों और भक्तोंने, जिनका जीवन इस प्रकारकी श्रद्धासे पूर्ण रहा है, अपने अनुभवसे इस श्रद्धाको सही पाया है। ईश्वरीय कानून मनुष्यको उसकी दैनिक आजीविका देता है, उससे अधिक नहीं देता — इस कानूनके हमारे अज्ञान या उपेक्षाके कारण असमानताएं पैदा हो गई हैं और उनसे तरह तरहकी मुसीबतें हमें उठाना पड़ता है। सब ओर अमीरोंके पास अनावश्यक चीजोंके भण्डार भरे रहते हैं जिनकी उन्हें जरूरत नहीं होती और इसलिए जिनकी उपेक्षा और बरबादी होती है। दूसरी ओर करोड़ों लोग जीविकाके अभावमें भूखों मरते हैं और मौतके शिकार होते हैं। यदि हरएक उतनी ही चीजें अपने पास रखे जितनी चीजोंकी उसे जरूरत हो, तो समाजमें किसीको भी तंगी न रहे और सब सन्तोषसे रहें। आज तो अमीरोंका गरीबोंसे कम असन्तोष नहीं है। गरीब आदमी करोड़पति बनना चाहता है, और करोड़पति अरबपति बनना चाहता है। [illegible]

अपरिग्रहकी दिशामें पहल करनी चाहिये। यदि वे अपनी सम्पत्तिको ही साधारण मर्यादाके भीतर रखें, तो भी भूखोंको आसानीसे खाना दिया जा सकता है और वे भी अमीरोंके साथ साथ सन्तोषका पाठ सीख लेंगे। अपरिग्रहके आदर्शकी सम्पूर्ण सिद्धिकी शर्त यह है कि पक्षियोंकी तरह मनुष्यके पास कोई आसरा न हो, कोई वस्त्र न हो और कलके लिए भोजनका कोई संग्रह न हो। बेशक, उसे अपनी रोजकी रोटीकी जरूरत होगी, मगर रोटी जुटाना ईश्वरका काम होगा, उसका नहीं। इस आदर्श तक विरले ही लोग पहुच सकते हैं। ऊपरसे असभव दिखाई देनेवाले इस आदर्शसे हम साधारण साधकोंको दूर नहीं भागना चाहिये। हमें यह आदर्श सदा अपनी दृष्टिमें रखना चाहिये और उसके प्रकाशमें अपने परिग्रहकी जाच करते रहना चाहिये तथा उसे कम करनेका प्रयत्न करना चाहिये। सच्ची सभ्यता आवश्यकताओंकी वृद्धिमें नहीं है, परतु जान-बूझकर और स्वेच्छापूर्वक उनके घटानेमें है। इसीसे सच्चे सुख और सन्तोषकी वृद्धि होती है तथा सेवाकी हमारी शक्ति बढती है। इस कसौटीको सामने रखकर हम विचार करें तो हम देखते हैं कि आश्रममें हमारे पास ऐसी बहुतसी चीजे है, जिनकी जरूरत हम सिद्ध नहीं कर सकते। और इस प्रकार हम अपने पडोसियोंको चोरी करनेके लिए ललचाते हैं।

शुद्ध सत्यकी दृष्टिसे तो शरीर भी एक परिग्रह ही है। यह सच कहा गया है कि भोगकी इच्छाके कारण आत्माके लिए शरीरोंकी सृष्टि होती है। जब यह इच्छा मिट जाती है तब शरीरकी आवश्यकता नहीं रह जाती और मनुष्य जन्म-मरणके कुचक्रसे मुक्त हो जाता है। आत्मा सर्व-व्यापक है; उसे पिंजडे जैसे शरीरमें बन्द रहनेकी या उस पिंजड़ेके खातिर बुरे काम करनेकी या किसीके प्राण लेनेकी भी चिन्ता क्यों करनी चाहिये? इस प्रकार हम सपूर्ण त्यागके आदर्श तक पहुंच जाते हैं और जब तक शरीर टिका रहता है, तब तक सेवाके काममें उसका उपयोग करना सीखते है — यहा तक कि रोटी नहीं, परन्तु सेवा

८

यज्ञका सिद्धान्त

१

हम बहुधा यज्ञ शब्दका उपयोग करते हैं। हमने कताईको दैनिक महायज्ञकी श्रेणी तक चढाया है। इसलिए यज्ञ शब्दके विभिन्न फलितार्थों पर विचार करना जरूरी है।

यज्ञका अर्थ है लौकिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकारके फलकी आकाक्षा रखे बिना दूसरोंके हितके लिए किया गया कर्म। 'कर्म' शब्दका यहा व्यापकसे व्यापक अर्थ करना चाहिये; उसमें कायिक, मानसिक और वाचिक — प्रत्येक प्रकारके कर्मका समावेश माना जाना चाहिये। 'दूसरों' से केवल मनुष्य-वर्गका नही बल्कि जीवमात्रका आशय है। इसलिए और अहिंसाकी दृष्टिसे भी, मनुष्य-जातिकी सेवाके लिए ही क्यों न हो, दूसरे जीवोंकी बलि देना या उनका नाश करना यज्ञ नही कहा जा सकता। वेदादिमें पशुबलिका जो विधान किया गया बताया जाता है, वह हमारे उपरोक्त अर्थकी दृष्टिसे अनुचित है। कारण, पशुबलि सत्य और अहिंसाकी बुनियादी कसौटी पर खरी नही उतरती। मैं वेदका अर्थ करनेकी अपनी अयोग्यता निःसकोच स्वीकार करता हू। लेकिन जहा तक इस विषयका सम्बन्ध है, अपनी इस अयोग्यता पर मुझे कोई खेद नही होता। क्योंकि वैदिक समाजमें पशुबलिके रिवाजका प्रचलित होना सिद्ध कर दिया जाय, तो भी अहिंसाका उपासक उसे अनुकरणीय नही मान सकता।

यज्ञकी उपरोक्त व्याख्याके अनुसार जिस कर्मसे ज्यादासे ज्यादा जीवोंका अधिकसे अधिक विशाल क्षेत्रमें कल्याण हो और जिसे ज्यादासे ज्यादा स्त्री-पुरुष बहुत आसानीसे कर सकें, उस कर्मको उत्तम यज्ञ कहा जायेगा। इसलिए तथाकथित उच्चतर ध्येयके लिए भी किसी दूसरेका

इससे किसीको डरनेका कोई कारण नही है। जो स्वच्छ मनमे सेवाकार्यमे लग जाता है, उसे उसकी आवश्यकता दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होती जाती है और उसकी श्रद्धा भी उसी प्रमाणमें बढ़ती जाती है। जो मनुष्य स्वार्थ छोड़नेके लिए और मनुष्य-जन्मके साथ मिले हुए इस कर्तव्यका पालन करनेके लिए तैयार नही है, वह सेवामार्ग पर नहीं चल सकता। जाने-अनजाने हम सब कुछ-न-कुछ निःस्वार्थ सेवा करते ही हैं। यही सेवा हम विचारपूर्वक करने लगें, तो पारमार्थिक सेवाकी हमारी वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाय, और न केवल हमें सच्चे सुखकी प्राप्ति हो, परन्तु सारे जगतका भी कल्याण हो।

२

यज्ञके बारेमे मैंने पिछले सप्ताह लिखा था, लेकिन मैं उसके विषयमें और ज्यादा लिखना चाहता हूं। मैं मानता हूं कि इस सिद्धांत पर, जो मानव-जातिके साथ साथ चला आ रहा है, अधिक विचार करना लाभप्रद ही होगा। दिनके चौबीसों घंटे कर्तव्य-पालन करना या सेवा करना यज्ञ है। इसलिए 'परोपकाराय सतां विभूतयः' जैसी सूक्ति, यदि 'उपकार' शब्दमें दूसरो पर कृपा करनेका भाव हो, सदोष कही जायगी।

निष्काम सेवा करना दूसरों पर नही बल्कि स्वयं अपने पर कृपा करना है, ठीक उसी तरह जैसे अपने ऋणका भुगतान करनेमें हम अपनी ही सेवा करते हैं, अपना बोझ हलका करते हैं और अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। इसके सिवा, न केवल भले लोग बल्कि हम सब अपनी साधन-सामग्रीको मानव-जातिकी सेवामें लगानेके कर्तव्यसे बंधे हुए हैं। और यदि ऐसा कानून है — जैसा कि वह स्पष्ट रूपमें है ही — तो जीवनमें फिर भोगका कोई स्थान नही रहता और भोगका स्थान त्याग ले लेता है। त्यागका कर्तव्य ही मानव-जातिकी विशेषता है, पशुमें उसके भेदका सूचक है।

लेकिन त्यागका अर्थ यहां संसारको छोड़कर अरण्यमें वास करना नहीं है। उसका अर्थ यह है कि जीवनकी तमाम प्रवृत्तियोंमें त्यागकी

फिर, यज्ञ करनेवाले कई सेवक ऐसा मानते हैं कि हम निष्काम-भावसे सेवा करते हैं, इसलिए हमें लोगोंसे जरूरी और बहुतसी गैर-जरूरी चीजें भी लेनेकी आजादी है। यह विचार सेवकके मनमें ज्यों ही आता है त्यों ही वह सेवक नहीं रह जाता; तब वह लोगों पर अत्याचारी शासक बन जाता है।

जो सेवा करना चाहता है उसे अपनी सुविधाओंका विचार नहीं करना चाहिये। अपनी सुविधाओंका विचार तो वह अपने स्वामीको — ईश्वरको — सौंप देता है। ईश्वरकी इच्छा होगी तो वह देगा, नहीं होगी तो नहीं देगा। इसलिए सेवक जो कुछ मिले सो सब अपने उपयोगके लिए नहीं रख लेगा; उसमें से अपने लिए वह उतना ही लेगा जितनेकी उसे सचमुच जरूरत है। बाकीका वह त्याग करेगा। उसे असुविधायें उठानी पड़ें तो भी वह शांत रहेगा, क्रोध नहीं करेगा और अपना चित्त स्वस्थ रखेगा। सद्‌गुणोंकी तरह सेवा करनेका सुख ही उसकी सेवाका पुरस्कार है, और उसीमें वह संतोष मानेगा।

इसके सिवा, सेवाकार्यमें किसी तरहकी लापरवाही या देर नहीं चल सकती। जो आदमी यह समझता है कि सावधानी और परिश्रमकी आवश्यकता तो सिर्फ अपना व्यक्तिगत कार्य करनेमें ही है, नि:शुल्क किया जानेवाला सार्वजनिक कार्य अपनी सुविधाके अनुसार जब करना हो तब और जिस तरह करना हो उस तरह किया जा सकता है, कहना चाहिये कि वह यज्ञका क-ख-ग भी नहीं जानता। दूसरोंकी स्वेच्छापूर्वक की जानेवाली सेवा अपनी पूरी शक्ति लगाकर की जानी चाहिये, यह सेवा पहले और अपना निजी कार्य बादमें — यही सेवाका सूत्र होना चाहिये। सारांश यह कि शुद्ध यज्ञ करनेवालेका अपना कुछ बाकी नहीं रहता; वह सब-कुछ कृष्णार्पण कर देता है।

फ्रॉम यरवडा मन्दिर, पृ० ५३–६०; १९५७

हमारी कुछ विचार-प्रेरक पुस्तकें

अहिंसक समाजवादकी ओर	१.००
आर्थिक और औद्योगिक जीवन–१ : उसकी समस्यायें और हल	४.००
खादी : क्यों और कैसे ?	२.००
गांवोंकी मददमें	०.४०
गीताबोध	०.५०
गोसेवा	१.५०
मेरा धर्म	२.००
मेरे सपनोंका भारत	२ ५०
मोहन-माला	१ २५
रामनाम	० ५०
सत्य ही ईश्वर है	०.८०
स्त्रियां और उनकी समस्यायें	१ ००
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१ ५०
हिन्द स्वराज्य	० ७०
विचार-दर्शन : १	१ ५०
विचार-दर्शन : २	१ ५०
विवेक और साधना	४ ००
गीता-रत्न-प्रभा	३ ००
गीता-मथन	३.००
जड़मूलसे क्रांति	१ ५०
तालीमकी बुनियादें	२ ००
संसार और धर्म	२ ५०
स्त्री-पुरुष-मर्यादा	१.५०
मार्ग	२ ००

डाकखर्च अलग

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद-१४

मंगल-प्रभात

लेखक : गांधीजी; अनु० अमृतलाल नाणावटी

सन् १९३० में गांधीजी यरवडा जेलमें थे। वहांसे वे ह मंगलवारको आश्रमके व्रतों पर विवेचन लिखकर साबरमती आ सदस्योंको भेजा करते थे। इसमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अ अस्तेय, अपरिग्रह आदि आश्रम-व्रतोंका गांधीजी द्वारा किया हुआ सरल और सुबोध विवेचन पाठकोंको मिलेगा। इस हिन्दी अनुवादमें सिर्फ उर्दू जाननेवालोंकी सुविधाके लिए आसान उर्दू शब्द भी दिये गये हैं।

कीमत ०.३७ डाकखर्च ०.१३

सर्वोदय

लेखक : गांधीजी; अनु० अमृतलाल नाणावटी

इस पुस्तिकाकी रचना प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक जॉन रस्किनकी पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' के आधार पर की गई है, जिसने गांधीजीके जीवनमें तत्काल महत्त्वका रचनात्मक परिवर्तन कराया था। इसमें बताया गया है कि हमारा ध्येय अधिकसे अधिक लोगोंका उदय और कल्याण करना नहीं, परन्तु सब लोगोंका उदय और कल्याण करना होना चाहिये। यह ध्येय किस तरह सिद्ध किया जा सकता है इसकी पुस्तकमें स्पष्ट चर्चा की गई है। गांधीजीके सर्वोदयके आदर्शको माननेवालों और उस पर अमल करनेकी इच्छा रखनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

कीमत ०.३५ डाकखर्च ०.१३